पल्लव कालीन कला : ऐतिहासिक विवेचन

सोनी कुमारी*

विकासशील स्थापत्य परम्परा के द्योतक दक्षिण भारत के मन्दिर, द्रविड़ शैली में बनाये गये। ये मन्दिर अनेक प्रागंणों, भव्य विमानों और हजारों अलंकृत स्तम्भों से बने मण्डपों वाले हैं। द्रविड़ शैली के मन्दिरों का निर्माण लगभग एक हजार वर्षों तक लगातार होता रहा। इस लम्बी अवधि में कई राजवंशों के शासकों ने शासन किया अतएव उनके नाम पर भी इन मन्दिरों के स्थापत्य की गणना की जाती है। द्रविड़ शैली में बने इन मन्दिरों के मुख्य काल इसप्रकार थे।

1. पल्लव काल (600 से 900 ई.)
2. चोल काल (900 से 1150 ई.)
3. पाण्ड्य काल (1150 से 1350 ई.)
4. विजयनगर कालः (1340 से 1565 ई.)
5. नायक काल : (1600 से 1700 ई.)

भारतीय वास्तु और मूर्तिकला के विकास में दक्षिण भारत के पल्लव राजवंश का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यहाँ पर 600 ई. के मध्य से 900 ई. तक पल्लव साम्राज्य रहा, जिसकी राजधानी काँची (कांचीवरम्) थी, जो पल्लव शासकों के समय एक प्रसिद्ध बन्दरगाह तथा व्यापारिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र था, किन्तु आजकल यह नगर उजड़ गया है। पल्लव के शासन काल में कूरम, पनमैल, महाबलीपुरम्, आदि अनेक स्थानों पर कला का संवर्धन हुआ। महाबलीपुरम् और कांचीपुरम् में द्रविड़ शैली के प्रारम्भिक मन्दिर पाये गये हैं। महाबलीपुरम् जिसे मामल्लपुरम् भी कहा जाता है जहाँ तीन प्रकार के मन्दिर बने। –रथ' 'मण्डप' तथा 'रचना प्रधान'। रथ मन्दिर के स्वरूप पर ध्यान दिया जाए तो समुद्र के तट पर स्थित चट्टानों को ऊपर से तराश कर मन्दिरों को रूप दिया गया था। इन्हें रथ मण्डपम कहा जाता है। पहले ये पाँच पाण्डवों के नाम पर थे, किन्तु खराब वातावरणीय परिस्थिति के कारण ये नष्ट हो गये। ये रथ मण्डप आयताकार थे। गर्भगृह के ऊपर छोटे–छोटे शिखर थे, जो पिरामिड युक्त थे। छतें ढोलाकार और स्तूपिका जैसे आमलक से अलंकृत थी। शैल मण्डपम तट से थोड़ा हटकर पहाड़ को तराश कर गुहा मन्दिर बनाये गये। इसके समीप ही एक विशाल चट्टान को तराशकर 'महाभारत के आख्यान' उत्कीर्ण किये गये। गजलक्ष्मी, गंगावतरण, दुर्गा आदि का अंकन उल्लेखनीय था। रचना प्रधान मन्दिरों का निर्माण महाबलीपुरम् के पत्थरों को तराश कर किया गया। समुद्रतट पर बनाये मन्दिर 'शोर टेम्पुल' हैं जो दो मन्दिरों के समूह में है। एक शिव दूसरा विष्णु का। यह द्वितल मन्दिर है। शिखर सीढ़ीदार तथा शीर्ष स्तूपिका द्वारा अलंकृत है।[1] ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह माना जाता है कि इस समय के सभी मन्दिर विशाल चट्टानों को काटकर बनाये गये हैं। इन मन्दिरों के प्रारम्भिक निर्माण का श्रेय सिंह विष्णु के कला प्रेमी पुत्र महेन्द्र वर्मन प्रथम (580–630 ई.) को दिया जाता है। प्राप्त शिलालेखों से पता चलता है कि अपनी निर्माण सर्जना के कारण उसे लक्षित की उपाधि से विभूषित किया गया था औश्र यही नहीं उन्हें 'विचित्र–चित्त' नाम से भी पुकारा जाता था। महेन्द्र वर्मन प्रथम के बाद इस परम्परा को महामल्ल नरसिंह वर्मन ने निभाया। नरसिंह वर्मन जो राजसिंह नाम से प्रसिद्ध थे। इन्होंने ईस्वी 680 से 728 तक कई पाषाण मन्दिरों का निर्माण कराया, जिनमें कांची का कैलाश मन्दिर, महाबलीपुम् का समुद्र तट मन्दिर तथा पनमलै का तालगिरीश्वर मन्दिर। इसके पश्चात् राजा राजसिंह ने इस परम्परा का विकास कर इसे आगे बढ़ावा दिया पल्लवों के अनुकरण पर परवर्ती चोलवंशीय शासकों ने भी तमिलनाडु क्षेत्र में कला के उत्थान में विशेष योगदान दिया।[2]

यह माना जाता है कि अनूठी संरचनाओं तथा मूर्तिकला के अद्वितीय उदाहरणों के कारण महाबलीपुरम् के गुफा मन्दिर पल्लव कला के श्रेष्ठ कला स्थलों के रूप में प्रसिद्ध है। यह स्थान कांची के सामने समुद्र तट पर स्थित है। महाबलीपुरम् पल्लव शासकों का प्रमुख बन्दरगाह था। उसके माध्यम से दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ पल्लवों ने समुद्र मार्ग से सांस्कृतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ाये। इस स्थल पर बने दो मन्दिर उल्लेखनीय हैं। प्रथम, पहाड़ी पर ओलक्क्णेश्वर तथा द्वितीय 'समुद्रतटीय मन्दिर' द्रविड़ शैली के हैं तथा विभिन्न भागों का कार्य बड़ा ही सुरूचिपूर्ण ढ़ंग से किया गया है। इन मन्दिरों का दर्शन करने पर अनेक पौराणिक कथाओं के रूप साकार हो उठते हैं।

इसप्रकार पल्लव कला के अन्तर्गत जो स्थापत्य बनाये गये उनके साथ मूर्तियों को सुन्दर ढंग से तराशा गया है। पल्लव युग में कला की प्रभूत उन्नति हुई कला के विभिन्न क्षेत्रों : वास्तुकला, मूर्तिकला, तक्षणकला में नई शैलियों तथा आदर्शों की स्थापना हुई। पल्लव कला का वास्तविक शुभारम्भ महेन्द्रवर्मन प्रथम के काल में हुआ। इस दृष्टि से मण्डपपटटु अभिलेख में महेन्द्रवर्मन विचित्र चित्त का यह कथन उपयुक्त है कि उसके द्वारा ब्रह्मा ईश्वर और विष्णु के लिए यह आयतन निर्मित हुआ जिसमें न तो इष्टिका का प्रयोग है, न द्रुम (लकड़ी) न लोहा

***शोध छात्रा, इतिहास विभाग, वीरकुवर सिंह विश्वविद्यालय आरा**

और न सुधार (चूना) का। उसने नये सिरे से तमिल क्षेत्र में मंडपे शैली के शैल आयतनों के निर्माण की परम्परा प्रारम्भ की। इसमें पल्लव नरेशों का योगदान महत्वपूर्ण है। उनके नाम पर वास्तुकला की विभिन्न शैलियों का जन्म हुआ।[3]

पल्लव वंश का एक प्राचीन अभिलेख (तथाकथित ब्रिटिश म्यूजियम, कापर प्लेट इन्सक्रिप्शन) पल्लव राजकुमार बुद्धवर्मन की रानी चारूदेवी द्वारा दालूर में नारायण देव के मन्दिर के निमित्त किये गये भूमिदान का उल्लेख करता है। यह लेख चतुर्थ शताब्दी के मध्य का है। उरुवपल्लि ताम्रपत्राभिलेख (चौथी सदी ई. के मध्य) एक विष्णु मन्दिर (विष्णुहार देवकुल) का वर्णन करता है। पल्लव राजा महेन्द्रवर्मन प्रथम (600–630 ई.) के मण्डगप्पटटु में स्थित शैलकृत मन्दिर पर उत्कीर्ण लेख में कहा गया है कि यह ईंट रहित, धातुविहिन एवं सिमेन्ट विहीन मन्दिर राजा विचित्र चित्त द्वारा ब्रह्मा, ईश्वर तथा विष्णु के आयतन के रूप में निर्मित करवाया गया। यह मन्दिर चट्टान को काटकर बना है ब्रह्मा, ईश्वर (शिव) एवं विष्णु तीनों महान हिन्दू देवताओं के निमित्त बना हुआ दक्षिण भारत का यह पूर्णरूपेण पाषाणमय चट्टान को काटकर विनिर्मित प्रथम मन्दिर है। वेरुर अभिलेख (विष्णुवर्मन कदम्बराजा का अभिलेख) में भी उक्त देवत्रयी का एक साथ बन्दना हुई है। वहाँ पर उनके नाम 'हर' 'नारायण' और 'ब्रह्मा' दिये हुए हैं। पल्लव नरेश महेन्द्रवर्मन ने अनेक मन्दिर बनवाये थे।[4]

पल्लव मूर्तिकार स्वतंत्र रूपों की परिकल्पना और विन्यास में मौलिक और दक्ष थे। ऐसी रचनाओं में कथात्मक दृश्यांकन की दृष्टि से गंगावतरण का दृश्य अत्यन्त ही मनोरम है। इसमें भगीरथ अपनी तपस्या के तेज से गंगा को आकाश से पृथ्वी पर ले आये। इन शिलाखण्डों पर हिमालय का वह दृश्य अंकित है जिसमें देव, मनुष्य एवं पशु निवास करते हैं। गंगावतरण कथा की उदात्तता लौकिक जीवन के साथ संवेगात्मक समन्वय है। एक ओर भगीरथ की कठोर तपस्या का दृश्य और दूसरी ओर उनकी नकल पर बिल्ली की तपस्या मुद्रा। इसमें भक्ति और हास्य रसों का अपूर्व समन्वय देखने को मिलता है। बिल्ली हिंसा से विरत तपस्या में लीन है तथा उसका स्वाभाविक प्रिय भोजन चूहा स्वच्छन्द, आचरण के लिए मुक्त है। तपोभूमि का यह स्वाभाविक दृश्याकंन है। हिम वन के अंचल में मुक्त हाथी संचरणशील हैं। हाथी समूह, जिसमें उनके शिशु भी हैं, स्वछन्द और स्वाभाविक गति से विचरण कर रहे हैं। गंगा की जलधारा में नागों का अवतरण, हंस पंक्तियों की जलक्रीड़ा, मृगों का जलयान का दृश्यांकन अत्यन्त ही मनोरम है। विविध मुद्राओं में गणों से घिरे शिव, जिन्हें प्रसन्न कर भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर ले आये हैं, स्थानक खड़े हैं। इनके सामने ही भगीरथ तपस्यारत हैं। इस विशाल शिलाखण्ड में मनुष्य, पशु, पक्षी, और देवता की मूर्तियाँ तराशी गई हैं वे यथार्थवादी दिखाई

देती हैं।पल्लव युगीन अन्य संरचनात्मक मन्दिरों में मुक्तेश्वर, मातंगेश्वर, ऐरातेश्वर, बालीश्वर, त्रिपुरान्तकेश्वर, इरवातवेश्वर तथा पिरवातेश्वर सभी कांजीवरम् में है। ये सभी मन्दिर छोटे आकर के हैं। राजा मागल्ल द्वारा निर्मित एकाश्मक विमान अथवा 'रथ' पल्लव स्थापत्य और तक्षण के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन रथों की संख्या नौ है, और ये सभी महाबलीपुरम् में विद्यमान हैं। इसी श्रेणी के मन्दिरों में हम त्रिमूर्ति शैलकृत मन्दिर को भी देख सकते है। इस प्रकार के एकाश्मक मन्दिरों में द्रौपदी रथ, नकुल–सहदेव रथ, अर्जुन रथ, धर्मराज रथ, भीम रथ, गणेश रथ, पिडारी रथ, वलैयुन्कुट्टै रथ, तथा त्रिमूर्ति शैलकृत मन्दिर जिसमें तीन प्रवेशद्वार हैं। विशिष्ट वास्तु रचना के कारण ये रथ बाहर और भीतर विमान रचना के पहलुओं पर वांछनीय प्रकाश डालते हैं। इनका निर्माण ऊपर से नीचे को हुआ है। इसके विपरीत संरचनात्मक मन्दिरों और भवनों का निर्माण नीचे से ऊपर को होता है। यही कारण है कि कुम्भाभिषेक की स्तूपी इन मन्दिरों में एकाश्मक भवन का अभिन्न अंग नहीं हैं, अपितु शिखर से नीचे का सम्पूर्ण विमान निर्मित हो जाने के बाद स्तूपों को अलग से बनाकर स्थापित किया गया है।[5]

मामल्ल शैली के मण्डप अपनी मूर्ति सम्पदा के लिए विख्यात हैं। महिषमर्दिनी, अनन्तशायी, त्रिविकम्, गजलक्ष्मी, दुर्गा, ब्रह्मा, हरिहर का मूर्ति विधान आदि भारतीय मूर्तिकला का प्रतिमान स्थापित करते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से आदिवराह मंडप में सिंह विष्णु की प्रतिमा महत्वपूर्ण है। यह देखा जा सकता है कि पल्लव राजाश्रय में मन्दिर स्थापत्यों के साथ ही तराशकर बनाये गये मूर्तिशिल्पों का भी बहुत महत्व है। हिन्दू धर्मशास्त्रों को दक्षिण भारत में बड़ी लोकप्रियता प्राप्त हुई। वात्सायन कांची के ही विद्वान थे जिन्होंने न्यायभाष्य की रचना की थी। पल्लव राजा बड़े सहिष्णु थे। उनके शासन काल में बौद्ध तथा जैन धर्मावलम्बियों को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है कि बौद्ध लोग स्वतंत्रतापूर्वक अपना जीवन यापन किया करते थे। उस राज्य में बौद्धों के सौ विहार थे जिनमें लगभग दस हजार भिक्षु निवास करते थे।

पल्लव राजाओं के शासन काल में साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। पल्लव नरेश साहित्यानुरागी थे। उनके समय संस्कृत भाषा और साहित्य का उत्तरोत्तर विकास हुआ। अधिकांश पल्लव नरेशों के अभिलेख संस्कृत भाषा में हैं। बाद में जब तमिल भाषा का प्रयोग होने लगा, तब भी उसका प्रशस्ति भाग संस्कृत में ही रहता था। पल्लवों की राजधानी शिक्षा–साहित्य का केन्द्र बन गयी थी। दूर–दूर के विद्वान वहाँ ज्ञानार्जन के लिए आते थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पल्लव राज्यकाल में सभी क्षेत्रों में विकास हुआ जिस कारण द्रविड़ संस्कृति एवं सभ्यता को ठोस आधार प्राप्त हो सका।

यह कहा जा सकता है कि पल्लव राजाओं के शासनकाल में निर्मित दक्षिण भारत का शैलकृत और रचनात्मक मन्दिर स्थापत्य द्रविड़ शैली अथवा दक्षिणी शैली का प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुतः पल्लव स्थापत्य कला ही द्रविड़ शैली की जन्मदात्री है। छठी शताब्दी से दसवीं शताब्दी ईस्वी का समय दक्षिण भारत के इतिहास और संस्कृति के विकास में एक महत्वपूर्ण काल था। उस काल में न केवल तीन प्रमुख राजवंशों बादामी का चालुक्य राजवंश, कांची का पल्लव राजवंश और मदुराई का पाण्ड्य राजवंश का अभ्युदय हुआ वरन नायनमार तथा आलवार संतों द्वारा शैव धर्म और वैष्णव धर्म का पुनरुत्थान भी हुआ। यद्यपि जैन धर्म कुछ समय तक उक्त धर्मों का प्रतिद्वन्दी बना रहा परन्तु बौद्ध धर्म का ह्रास होता गया। इस युग में दक्षिण भारत ने असाधारण स्थापत्य और मूर्तिशिल्प को जन्म दिया। दक्षिण भारतीय कला की शैली का स्वरूप विषय और वह सैद्धान्तिक पक्ष निर्धारित किया जो मध्यकाल में विजयनगर साम्राज्य के अवसान काल तक कलाकारों का पथ प्रदर्शन करता रहा। पल्लव परिवार के लोग कांची के निकट तीसरी चौथी शताब्दियों से ही विद्यमान थे। समुद्रगुप्त के अभिलेख में कांची के विष्णुगोप का उल्लेख हुआ है जो सम्भवतः पल्लव था। यद्यपि पल्लव राजवंश का इतिहास सिंहविष्णु (लगभग 550.580 ई.) के समय से प्रारम्भ होता है क्योंकि वह स्वतंत्र पल्लव राज्य का प्रथम शासक था, परन्तु पल्लव स्थापत्य का इतिहास उसके महान पुत्र महेन्द्रवर्मन प्रथम (लगभग 580.630 ई.) के समय से प्रारम्भ होता है। राजा महेन्द्रवर्मन प्रथम ही पल्लव स्थापत्य और तक्षण शिल्प का जन्मदाता था।[6]

पल्लव शासकों का इतिहास द्रविड़ शासकों में सर्वश्रेष्ठ माना जा सकता है। इस परिच्छेद में मन्दिर अथवा देवालय के विभिन्न आधारभूत तत्वों की धर्मशास्त्रों, पुराणों, आगमों एवं वास्तुशास्त्रों के अनुसार चर्चा करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि भारतीय धार्मिक स्थापत्य एवं तक्षण के विकास के मूल में वास्तु विद्या की देवी व अर्द्धदेवी उत्पत्ति का विस्तार ही निहित था। मन्दिर स्थापत्य की ब्राह्मण धर्म के कर्म काण्ड, यज्ञ परम्परा, धार्मिक पूजा एवं आगम दर्शन की दृष्टि से बहुत महत्व है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कला सृजन की दृष्टि से पल्लव राजवंश का इतिहास बहुत ही समृद्ध रहा है। क्योंकि द्रविड़ शासन काल में पल्लव राजवंश ने बहुत ही उत्तम श्रेणी के मन्दिरों और मूर्ति शिल्पों का निर्माण कराया। इस कारण यह कहा जा सकता है कि भारत में पल्लव राजवंश का इतिहास अपने आप में उच्चस्तर का रहा है, इसमें संदेह नहीं किया जा सकता।

निष्कर्ष के रूप में पल्लव इतिहास के बारे में यह कहा जा सकता है कि द्रविड़ ही नहीं, बल्कि भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति को पल्लव राजवंशों में पूर्ण रूप से महत्व मिला और स्थापत्य, मूर्तिशिल्प और साहित्य को बहुत प्राथमिकता

मिली। इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो पल्लव कला का इतिहास बहुत ही समृद्धिशाली रहा है। इस कारण यह कहा जा सकता है कि द्रविड़ परिवेश में धर्म और कला में समन्वय स्थापित्य किया गया। एक प्रकार से देखा जाय तो पल्लव द्रविड़ स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प के अभ्युदय और विस्तार का युग रहा है। यह भी कहा जा सकता है पल्लव काल भारतीय इतिहास की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट रहा है।

कला और इतिहास को अलग से देखना न्याय संगत नहीं माना जा सकता क्योंकि कला से इतिहास की तथा इतिहास से कला की परख होती है। इस कारण पल्लव युग का इतिहास वास्तव में उस समय के मन्दिर स्थापत्य और मूर्तिशिल्प के निर्माण युग से मानना श्रेयस्कर हो सकता है यह कहा जा सकता है कि लेकिन पल्लव राजवंश के युग परक इतिहास को नकारा नहीं जा सकता क्योंकि पल्लव राजवंश के काल में ही स्थापत्य और मूर्तिशिल्प का निर्माण होता रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. रीता प्रताप। भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास। राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी। पृष्ठ – 569–570।
2. के. आर. श्रीनिवास 'टेम्पल्स ऑफ साउथ इण्डिया', नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली–2001 पृष्ठ–139–140।
3. कोलेश्वर राय। प्राचीन भारत, प्रकाशक–किताब महल, इलाहाबाद। पृष्ठ– 436
4. महेश चन्द्र जोशी–भारतीय कला, पृष्ठ : 162 163।
5. ओ. सी. गांगुली– द आर्ट ऑफ दी पल्लव, कलकत्ता– 1957 पृष्ठ 181।
6. शिवाराममूर्ति : दी आर्ट ऑफ इंडिया, न्यूयार्क 1974, पृष्ठ : 482